'शिक्षा बचाओ आंदोलन'

मिसाल बौद्धिक दरिद्रता की

संजीव कुमार

भारत के हिन्दूवादी संगठन मानते हैं कि हमारा सुदूर अतीत गौरवमयी है। वही उनके लिए आदर्श है तथा समस्त ज्ञान एवं मूल्यों का स्रोत है और सवालों से परे है। इस विचारधारा को प्रोत्साहित करने के लिए साहित्य भी सृजित किया जा रहा है। हाल ही में 'शिक्षा बचाओ आन्दोलन' के प्रणेता दीनानाथ बत्रा की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनमें से कुछ किताबें गुजरात के स्कूलों में पढ़ाई भी जा रही हैं। संजीव कुमार का यह लेख दीनानाथ बत्रा की पुस्तकों का जायजा लेता है।

बातों के सिर-पैर प्राणियों के सिर-पैर की तरह नहीं होते कि उनका होना या न होना नंगी आंखों से दिख जाए।

अभी जब इन पंक्तियों का लेखक यह लेख लिखने बैठा है, उसके सामने विश्व हिंदू परिषद् के श्री जुगल किशोर का एक ताज़ातरीन साक्षात्कार है। श्री जुगल किशोर हिंदुओं की 'घर वापसी' की मुहिम के संयोजक हैं और उनका साक्षात्कार 15 दिसंबर, 2014 के 'द इकोनॉमिक टाइम्स' में छपा है। इसमें वे फ़रमाते हैं, 'वेदों में मैला ढोने की प्रथा और लोगों के बहिष्कार (आशय अस्पृश्यता से है) का कोई उल्लेख नहीं है। अगर आप इन समुदायों को निकट से देखें तो उनके गोत्र सोलंकी, चौहान, सिसोदिया, राठौर आदि हैं। कारण यह कि वे पराजित राजपूत हैं जिन्हें इस्लाम न अपनाने के लिए दंडित किया गया। वे निम्न में भी निम्नतम बना दिए गए। दूसरे हिंदुओं को उनका सामाजिक बहिष्कार करने पर बाध्य किया गया। अब नरेंद्रभाई मैला ढोने की प्रथा को ख़त्म करने और मुग़ल परंपरा का अंत करने का प्रयास कर रहे हैं।'

लेखक परिचय

देशबन्धु कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में हिन्दी के एसोसिएट प्रोफेसर हैं। साहित्यिक आलोचना और कहानी समेत विभिन्न विधाओं में लेखन। 'जैनेन्द्र और अज्ञेय : सृजन का सैद्धांतिक नेपथ्य' किताब पर युवा आलोचना के देवीशंकर अवस्थी सम्मान से सम्मानित। जनवादी लेखक संघ की केन्द्रीय पत्रिका 'नया पथ' के संपादन से सम्बद्ध हैं।

वेदों के बाद सीधा मुग़ल काल में छलांग लगा देना, बीच में 'गीता' और 'मनुस्मृति' और इस तरह के दशाधिक पाठों तथा उनमें प्रतिबिंबित होती सामाजिक व्यवस्था को गोल कर देना, अस्पृश्यता को मुग़लों द्वारा स्थापित परंपरा बताना! - ज़ाहिर है, श्री जुगल किशोर की बातों का कोई सिर-पैर नहीं है। फिर इस तरह की बातें इतने आत्मविश्वास के साथ कैसे कही जाती हैं? दो ही कारण हो सकते हैं: या तो कहने वाले को खुद ही यह दिखाई न दे कि उसकी बातें बेसिर-पैर की हैं या फिर उसे यह भरोसा हो कि वह जिन लोगों तक अपनी बात पहुंचाना चाहता है, उनके पास सिर-पैर की इस अनुपस्थिति को देखने वाली निगाह नहीं है।

मुझे लगता है कि मामला 'या तो, या फिर' वाला नहीं है। दोनों कारण साथ-साथ काम कर रहे हैं। हिंदुत्ववादियों को अपनी बौद्धिक दरिद्रता के चलते ये ऊटपटांग बातें पूरी तरह दुरुस्त भी लगती हैं। साथ ही, उन्हें यह भी पता है कि उन्हें किन लोगों को संबोधित करते हुए उनके अज्ञान का लाभ उठाना है। शिक्षा, और उसमें भी इतिहास की शिक्षा, इसीलिए उनके निशाने पर रहती है कि इससे ऐसे लोगों की तादाद के बढ़ते जाने का वास्तविक ख़तरा है जिन्हें उनकी बातें बेसिर-पैर की नज़र आएंगी। ग़ौरतलब है कि ये हिंदुत्ववादी विचारक (?!) कभी किसी बौद्धिक मंच पर बहसों में शामिल नहीं होते। वे उन जगहों पर जाते भी हैं तो तोड़-फोड़ या नारेबाज़ी की कार्रवाई को अंजाम देने। हां, टेलीविज़न चैनलों

की बहसों में कई बार अवश्य शामिल होते हैं जहां उन्हें पता होता है कि तर्क-विवेक-सम्मत प्रतिपादन के लिए अपेक्षित धैर्य की गुंजाइश बहुत कम है और प्रदर्शनकारी कला के उपयोग की गुंजाइश बहुत ज़्यादा। ये मुख्यतः गाज-फेन उगलने वाली बहसें होती हैं जिनमें बौद्धिक दरिद्रता को गाज-फेन के भीतर छिपा देने की सहूलियत पर्याप्त मात्रा में रहती है।

कोई चाहे तो कह सकता है कि बौद्धिक क्षमता की पहचान कराने वाले मानक दरअसल ऐसी निर्मितियां हैं जो आधुनिकता की पश्चिमी परियोजना द्वारा हमारे ऊपर थोप दी गई हैं। यह बौद्धिक कर्म के आधुनिकता-निर्मित ढांचे का असर है जिसके चलते एक ख़ास प्रविधि का पालन करने वाला, तार्किक-वैज्ञानिक चिंतन के मुहावरों में बंधा लेखन ही हमारे लिए उत्तम बौद्धिकता की निशानी होता है। जिन विचारकों में ग़ैर-मिलावटी भारतीयता बची हुई है, उनके यहां यह निशानी न मिले, यह स्वाभाविक है। वस्तुतः उनके यहां ठेठ भारतीय क़िस्म की बौद्धिकता है जिसे पश्चिमी आधुनिकता ने, और इसीलिए हम जैसे जड़ों से कटे लोगों ने, बौद्धिकता मानने से इंकार कर दिया है।

यह उत्तर-आधुनिक दलील प्रथमदृष्ट्या बहुत ग़लत नहीं लगती। पर शिक्षा-संस्कृति के मोर्चे पर संघ की अगुवाई करने वालों को पढ़ें तो इस दलील की कमज़ोरी दयनीय ढंग से उजागर होने लगती है। वहां बौद्धिक कर्म के उन सदियों पुराने उसूलों का भी कोई पालन नहीं मिलता जिनका स्वयं प्राचीन भारतीय पांडित्य-परंपरा में सख़्ती से पालन किया गया है। इसका एक अद्भुत नमूना है, दीनानाथ बत्रा की किताब 'भारतीय शिक्षा का स्वरूप'। यह किताब अक्तूबर महीने की 29 तारीख़ को एक भव्य समारोह में वेंकैया नायडू के हाथों लोकार्पित हुई जिसमें श्री नायडू ने इस किताब की, और साथ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से शिक्षा-संस्कृति के मोर्चे पर काम करने वाले समर्पित प्रचारक बत्रा जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

किताब पर आने से पहले आदरणीय दीनानाथ बत्रा के महत्त्व को रेखांकित करना ज़रूरी है। 'शिक्षा बचाओ आंदोलन' की अगुवाई करते हुए 2014 में वेंडी डॉनीगर की किताब 'द हिंदूज़ : ऐन ऑल्टरनेटिव हिस्ट्री' को लुगदी करवाने में कामयाबी हासिल कर वे चर्चा में आए थे। वैसे वे काफ़ी समय से संघ के शिक्षा-नीति-निर्धारकों में रहे हैं और राजग-1 के दौरान 2001 में एन.सी.ई.आर.टी. के सलाहकार के तौर पर उन्होंने उस समिति का नेतृत्व किया था जिसने इतिहास की किताबों में से हिंदू राष्ट्रवादियों को ठेस पहुंचाने वाले हिस्सों को निकाल बाहर करने के काम को अंजाम दिया। शिक्षा के भारतीयकरण और उसमें मूल्य-शिक्षा के समावेश के उद्देश्य से बत्रा जी ने नौ पाठ्यपुस्तकें भी लिखीं, जिनका गुजराती में अनुवाद कर गुजरात सरकार ने अपने 42000 विद्यालयों में उन्हें पढ़ाना अनिवार्य किया है। इनमें 'तेजोमय भारत' और 'प्रेरणादीप 1' 'प्रेरणादीप 2' जैसी किताबें हैं जिनमें विद्यार्थियों के लिए परोसी गई सामग्री काफ़ी चर्चा में रही है। मसलन, 'तेजोमय भारत' में महाभारत की कथा के आधार पर प्राचीन भारत में स्टेम सेल रिसर्च होने, टेलीविज़न के होने, अनश्व रथ के नाम से मोटरकार की मौजूदगी इत्यादि की जानकारी दी गई है। 'प्रेरणादीप' के अलग-अलग भागों में स्पष्ट नस्लवादी मिज़ाज वाली 'शिक्षाप्रद' कहानियां हैं। गुजरात के निवर्तमान मुख्यमंत्री और देश के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने स्वयं इन किताबों के महत्त्व पर प्रकाश डाला है और भारतीय शिक्षा के उद्धार की मुहिम में बत्रा जी के महती योगदान को एकाधिक अवसरों पर स्वीकार किया है।

इन बातों से समझा जा सकता है कि राजग-2 में शिक्षा के स्तर पर जो कुछ होने जा रहा है - और ज़ाहिर है कि बहुत कुछ होने जा रहा है - उसमें दीनानाथ बत्रा नेतृत्वकारी भूमिका में रहेंगे। ऐसे व्यक्ति के विचारों को सीधे उसकी पुस्तक से हासिल करने में किसकी दिलचस्पी नहीं होगी! लिहाज़ा, मैं प्रभात प्रकाशन से साढ़े तीन सौ रुपये में उनकी किताब ख़रीद लाया और यद्यपि उसे पढ़ना असंभवप्राय था, उसने पढ़ने की कोशिश में कोई कसर नहीं रखी। इस कोशिश के दौरान जो अनुभव हुए, उनका सारांश आगे दिया जाता है।

अगर आप आजकल के बाबाओं को प्रामाणिक भारतीयता का सबसे ठोस उदाहरण मानते हों, तो बत्रा जी की यह किताब भारतीयता से ओतप्रोत है। इसकी अंतर्वस्तु और शैली, दोनों बाबाओं के प्रवचन जैसी है। इसमें न किसी उद्धरण का स्रोत बताने की ज़हमत उठाई गई है, न किसी तथ्य को प्रमाणपुष्ट करने की। (वह सब बत्रा जी कह रहे हैं, यही क्या काफ़ी नहीं है!) उद्धृत किए गए लोगों का पूरा परिदृश्य इतना वैविध्यपूर्ण है कि आप दंग रह जाएंगे।

यहां श्री मां, साईं बाबा, एकनाथ जी, स्वामी रंगनाथन, मां शारदा इत्यादि से लेकर विक्टर ह्यूगो, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गांधी, बिनोवा भावे, गिजुभाई, दीनदयाल उपाध्याय, श्री गोलवलकर, डॉ. कोठारी, डॉ. राधाकृष्णन और पता नहीं कौन-कौन से विचारक मौजूद हैं और ऐसा लगता है कि इन सबने मिलकर कुछ एक जैसी ही बातें कही हैं। उद्धरणों के साथ कहीं भी संदर्भ नहीं बताया गया है, पर वह उतनी चिंताजनक बात नहीं। चिंताजनक यह है कि पढ़कर कई बार संदेह होता है कि लेखक अपने ही शब्दों पर उद्धरण चिह्न ठोककर उन्हें किसी नामी-गिरामी के हवाले किए दे रहा है। पृष्ठ 177 पर स्वामी विवेकानंद का एक उद्धरण हैः ''समझ के बिना कोरा ज्ञान मस्तिष्क में पड़ा सड़ांध पैदा करता है। प्रेम के ढाई अक्षर आत्मसात करने से जीवन सफल तथा धन्य हो जाता है।'' फिर 186 पर विवेकानंद का उद्धरण हैः ''शिक्षा जानकारियों का ढेर नहीं, जो मस्तिष्क में पड़ा रहकर सड़ांध पैदा करता है। ज्ञान के चार अक्षर भी यदि हम जीवन में आत्मसात कर लें तो हमारा जीवन सफल हो जाए।'' चूंकि दोनों उद्धरणों का स्रोत नहीं बताया गया है, इसलिए प्रामाणिकता जांची नहीं जा सकती, पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'मस्तिष्क', 'सड़ांध', 'अक्षर', 'जीवन', 'आत्मसात' और 'सफल' जैसे शब्दों को दुहराते हुए, और 'प्रेम के ढाई अक्षर' तथा 'ज्ञान के चार अक्षर' का अंतर बरत कर, दो जगह दो बातें स्वामी विवेकानंद ने नहीं कही होंगी। यह बत्रा जी की अपनी मेधा से निकले हुए सूत्र ही हो सकते हैं जिन्हें अधिक वज़न देने के लिए उन्होंने विवेकानंद के नाम कर दिया है। यह बात तब और पुष्ट होती है जब आप पाते हैं कि पृष्ठ 17 पर लेखक बिना किसी को उद्धृत किए यह बात कह रहा हैः ''शिक्षा जानकारियों का ढेर नहीं है, जो मस्तिष्क में पड़ी रहकर सड़ांध पैदा करती हैं।'' फिर पृ. 205 पर उसके अपने शब्दः ''शिक्षा कोरा अक्षर-ज्ञान नहीं है, जो मस्तिष्क में पड़ा सड़ांध पैदा करता है।'' और तो और, इसी पुस्तक में बत्रा जी की जो कविताएं संकलित हैं, उनमें भी यह रचनात्मक सूत्रीकरण मिलता है, जिससे यह अंतिम रूप से सिद्ध हो जाता है कि विवेकानंद को इसका श्रेय उन्होंने महज़ उदारतावश दे दिया था। कविता पंक्ति हैः 'यदा-कदा मास्टरजी आते हैं, मस्तिष्क में ढूंसते हैं अक्षरज्ञान/वह वहां सदा सड़ांध पैदा करता है, नहीं है यह अनुभूत ज्ञान।'

ग़रज़ कि सड़ांध ने बत्रा जी के शिक्षा-चिंतन पर लगभग क़ब्ज़ा जमा लिया है। यह स्वामी विवेकानंद के चिंतन से आया हुआ शब्द है, ऐसा मानने को जी नहीं करता, पर जांच कैसे हो!

पृष्ठ 186 पर डॉ. राधाकृष्णन को लेखक ने अंग्रेज़ी में उद्धृत किया हैः "Stagnation is death and motion is life"। यही वाक्य इसी तरह पृष्ठ 177 पर लेखक की अपनी बात के रूप में है। अब चूंकि राधाकृष्णन स्वयं बत्रा जी के जीवनकाल में रहे हैं, इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि बत्रा जी के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ है और दोनों एक ही व्यक्ति हैं!

किताब में आए सभी उद्धरणों का हाल ऐसा ही है। कुछ नमूने देखेंः
पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने लिखा है-
जब हृदय में शुद्धता हो, तो चरित्र में सुंदरता आ जाती है,
यदि चरित्र सुंदर हो तो, परिवार में समरसता होती है। (पृ. 32)
श्री मां का कहना है- ''जो व्यक्ति लक्ष्यविहीन है, वह सुखविहीन तथा श्रीविहीन है।'' (पृ. 107)
ऐसे व्यक्तियों के संबंध में स्वामी रामतीर्थ ने कहा है- "He has the strength of ten, because his heart is pure." (पृ. 183)
मैक्समूलर ने लिखा था- "We have conquered India once we shall conquer it again through Education." (उद्धरण यथावत) (पृ. 218)

यूसुफ अली की पुस्तक, जिसमें उसने महिलाओं/बालिकाओं की शिक्षा के संबंध में जो विचार लिखे हैं, वे विचार करने योग्य हैं। उसका कथन है कि जब तक लड़कियों की शिक्षा में सुधार नहीं होता, तब तक भारत की स्थिति में सुधार की संभावना बहुत ही कम है। (पृ. 43)

ऐसे उद्धरणों से पूरी किताब भरी पड़ी है। बात किसी भी स्तर की हो, उसे किसी-न-किसी के उद्धरण से पुष्ट किया गया है। लेखक को यह भले ही न पता हो कि संदर्भ-सहित उद्धरण किस तरह दिए जाते हैं, यह अवश्य पता है कि

अपनी हर बात को किसी और के हवाले से पुष्ट करते चलना एक प्रतिष्ठा प्राप्त अकादमिक पद्धति है। इस पद्धति का उपयोग करने के लिए सचमुच जो श्रम करना पड़ता है, उसकी क्षमता और अवकाश न भी हो तो क्या फ़र्क़ पड़ता है? अपनी ओर से वाक्य बनाओ और उसे किसी के हवाले कर दो! जहां कोई बड़ा नाम ध्यान न आए, वहां 'एक शिक्षाविद् का मत' बताकर काम चला लो (पृ.23)। इसी पृष्ठ पर किन्हीं राडन और सर आपर्सीनन को भी उद्धृत किया गया है जिनके बारे में कुछ पूछते हुए भी मुझे डर लगता है कि कहीं लोग पलटकर यह न कह बैठें कि अरे, इन्हें नहीं जानते, कैसे अनपढ़ हो? इसलिए मेरे जैसा व्यक्ति यह क़यास लगाने की गुस्ताख़ी नहीं करेगा कि ये नाम काल्पनिक भी हो सकते हैं। हां, यह कहने की गुस्ताख़ी ज़रूर करेगा कि यह जो कोई विदेशी या ख्रिस्तान है राडन नाम का, उसने शिक्षा का 'उद्देश्य व्यक्ति का परमब्रह्म में विलय प्राप्त करना' तो नहीं ही बताया होगा, जैसा कि उसके नाम से उद्धृत कथन में बताया गया है। लिहाज़ा, या तो राडन का नाम काल्पनिक है या फिर उसका कथन। शायद इसीलिए अपनी कल्पना को और कष्ट न देकर बत्रा जी ने उसी पृष्ठ पर अन्यत्र 'एक शिक्षाविद्' से काम चला लिया है।

चूंकि इस तरह के उद्धरणों की प्रामाणिकता को जांचने का कोई तरीका नहीं है, इसलिए बत्रा जी यहां बाइज़्ज़त न सही, संदेह का लाभ पाकर निकल जाते हैं; फंसते वहां हैं जहां सचमुच किसी प्रसिद्ध कथन या काव्यांश को उद्धृत कर बैठते हैं। 'कामायनी' की पंक्तियों का उन्होंने क्या हाल किया है, देखिए:

''ज्ञान भिन्न, क्रिया भिन्न,
और इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
यदि एक-दूसरे से ना मिल सकें,
तो विडंबना है जीवन की।''पृ.127

प्रसाद जी के साथ एक ही बार ऐसा बरताव करके वे संतुष्ट नहीं हुए। दुबारा-तिबारा भी किया। पृ. 186 और फिर पृ. 220 पर यह छंद इस रूप में उद्धृत है:

''ज्ञान-भिन्न क्रिया कुछ और,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक-दूसरे से न मिल सकें,
तो विडंबना है जीवन की।''

इसी तरह एक छोटी-सी कहानी रचते हुए लेखक ने लक्ष्मण और उनकी पत्नी उर्मिला के बारे में लिखा है, ''लक्ष्मण जब वनवास जाने लगे थे तो उन्होंने कहा था कि मैं श्रीराम के साथ जा रहा हूं, यह नहीं कहा कि मैं कब लौटूंगा। उर्मिला ने अपनी एक सखी से यह शिकायत की थी कि सखी, वे मुझसे कहके जाते।'' (पृ. 269) याद कीजिए कि 'सखी, वे मुझसे कह कर जाते' मैथली शरण गुप्त की पंक्ति है जो उनकी कविता में गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा का कथन है।

पश्चिमी विद्वत्ता की बराबरी में दिखने की ग़रज़ से बत्रा जी पूरी किताब में लगातार अंग्रेज़ी में कुछ-कुछ कहते चलते हैं। पढ़ते हुए काशीनाथ सिंह की कहानी 'संकट' याद आती है जिसमें फ़ौज से छुट्टी पर आया हुआ राधो अपने दोस्तों के साथ बातें करते हुए हास्यास्पद ढंग से अंग्रेज़ी का प्रयोग करता चलता है। कुछ नमूने देखिए:

Keep your mind on things that you want and off the things that you don't want. (27)

Our mind is videographer and tape recorder. (27)

In the words of Swamiji The sutras apply to and cover each and every chapter of each and every branch of mathematics (Arithmetic's) Algebra, Geometry, Trigonometry, astronomy, Calculus etc. (49) (उद्धरण यथावत)

We are the trustee of the wealth. (122)

Read, chew and digest. (176)

All for one and one for all is our song. (188)

ये वाक्य अचानक हिंदी के बीच टपक पड़े हैं और उद्धरणों के रूप में नहीं हैं। ऐसे उदाहरण अनगिनत हैं। प्रो. कपिल कपूर ने किताब का प्राक्कथन लिखते हुए ठीक ही कहा है, 'सबसे पहले इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि हिंदी में पुस्तक रचना का श्री बत्राजी का फ़ैसला सिद्धांतों के आधार पर लिया गया है। आजकल शिक्षित भारतीयों के बीच अंग्रेज़ी के प्रति दासता की मनोवृत्ति मौजूद है। हर कोई इस उम्मीद में अंग्रेज़ी में लिखना चाहता है कि शिक्षित लोग पर उसका रोब पड़ेगा...।' बत्रा जी को पढ़ते हुए समझा जा सकता है कि किस तरह उनका अद्‌भुत अंग्रेज़ी ज्ञान उन्हें बार-बार उस ज़बान की ओर धकेलता है, पर सिद्धांतों के आधार पर लिए गए फ़ैसले के चलते ही वे हिंदी में लिखते जाते हैं। कहीं-कहीं अंग्रेज़ी में कुछ कह भी जाते हैं, तो निश्चय ही ऐसा वे इस उम्मीद के साथ नहीं करते होंगे कि 'शिक्षित लोगों पर उसका रोब पड़ेगा'। प्रो. कपिल कपूर का कहना बिल्कुल दुरुस्त है। अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा वे, काशीनाथ सिंह के राधो की तरह, अशिक्षितों पर रोब ग़ालिब करने के उद्देश्य से करते होंगे।

ग़लत-सही उद्धरणों और अंग्रेज़ी वाक्यों वाली यह बाबासुलभ शैली भी क्षम्य होती, अगर कम-से-कम सुसंबद्ध तरीके से अपनी बात कहने का गुर ही बाबाओं से ले लिया गया होता। बत्रा जी की मुश्किल यह है कि प्रवचन और लेखन का यह बुनियादी सिद्धांत भी उनके यहां मात खा जाता है। वे अपनी जैसी-तैसी स्थापनाओं को बस जैसे-तैसे स्थापित करते चले जाते हैं। किताब के पहले ही अध्याय को देखें तो उसका शीर्षक है, 'भारतीय शिक्षा का स्वरूप', पर पूरे अध्याय में इस स्वरूप को लेकर शायद ही कोई बात कही गई है। असंबद्ध अनुच्छेदों में तरह-तरह की बातें कहता हुआ लेखक शिक्षा संबंधी सरकारी तंत्र के ढांचे पर विचार व्यक्त करने लगता है और फिर अचानक, बिना किसी बुद्धिगम्य कारण के, 'गांधी के शिक्षा संबंधी विचार' उपशीर्षक के अंतर्गत अपनी समझ के अनुसार उनके विचारों को बिंदुवार रखने लगता है। इसी तरह एक जगह शिक्षा के अधिकार को लेकर नेशनल सैंपल सर्वे की कुछ बातों को बिंदुवार रखते हुए एक बिंदु यह भी दिया गया हैः 'हम कहते हैं - सा विद्या या विमुक्तये, अब तो कहा जाता है - सा विद्या या नियुक्तये' (पृ. 201)। पढ़कर दिमाग़ चकरा जाता है कि आख़िर नेशनल सैंपल सर्वे वालों को क्या हो गया कि '30 प्रतिशत विद्यालयों के पास भवन नहीं हैं' जैसी बातें बताते-बताते संस्कृत की शब्दक्रीड़ा में लग गए!

ऐसी असंबद्धता के उदाहरण किताब में शुरू से आख़िर तक मिलते हैं। वस्तुतः इसे पुस्तक का एक गुण नहीं, बल्कि अंगी गुण कहना चाहिए। विचार जैसे भी हों, उन्हें विचार के रूप में सिलसिलेवार रखने की एक लेखक से जो अपेक्षा की जाती है, बत्रा जी उसकी जमकर उपेक्षा करते हैं और शायद इसके अलावा उनके पास कोई चारा भी नहीं है।

असंबद्धता के इस अंगी गुण के बीच बत्रा जी के शिक्षा-चिंतन की जो कुछ मूल्यवान बातें पकड़ में आती हैं, उन्हें इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है :

- शिक्षा का उद्देश्य है, 'बुद्धि और हृदय का संतुलित समुत्कर्ष करना, फुरतीले शरीर में व्यवहारशील मस्तिष्क रखना तथा आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर अपने व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन को सुख-संपन्न बनाकर मोक्ष को प्राप्त करना' (पृ. 24)।
- मार्क्स, मैकाले और मैक्समूलर - 'इन तीन मक्कारों ने हमारी शिक्षा, संस्कृति और इतिहास को विकृत किया, इन्होंने हमारे गौरव को विदेशी कर्णधारों के नाम के साथ जोड़कर हमारे स्वर्ण पृष्ठों पर कालिख लगाने का काम किया' (पृ. 50)।
- 'स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक अन्याय जिस विषय के साथ हुआ है, वह है इतिहास। इतिहास-लेखन के लिए एनसीईआरटी द्वारा जो मार्गदर्शन के निर्देश दिए गए हैं, उससे इस विषय का विकृत स्वरूप हमारे सम्मुख आएगा। देश की एकता को प्रोत्साहन देने का यह अप्राकृतिक प्रयास सफल नहीं हो सकेगा।' (पृ. 138)
- आदर्श बालक की संकल्पना को साकार करने के लिए नमस्कार मुद्रा, मौन, ओंकार उच्चारण, प्राणायाम, ब्रह्मनाद, गायत्री मंत्र एवं शांति पाठ का अभ्यास, यज्ञ-हवन, प्रातःस्मरण, योगाभ्यास, यम-नियम आदि का पालन, उन्हें

गीता, रामायण का पाठ और भावार्थ बताना - ये सब आवश्यक कार्यक्रम हैं। (देखिए, 'आदर्श बालक की संकल्पना' शीर्षक अध्याय)

- 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में विचार करते हुए संस्कृति, राष्ट्र, संप्रदाय, धर्म, पंथनिरपेक्षता, शिक्षा, आचार्य, विद्यालय, पाठ्यक्रम, परीक्षा आदि शब्दों के ठीक अर्थ तथा इनसे जुड़े भावों को यदि देश की मिट्टी के साथ नहीं जोड़ा गया तो कोई भी शिक्षा योजना राष्ट्रीय नहीं हो सकती और इसका परिणाम होगा भारत में अभारत के चिह्न।' (पृ. 205)
- शिक्षा का अटूट संबंध संस्कृति और राष्ट्र से है। हमारे देश में कहा-सुना जाता है कि भारतीय संस्कृति मिली-जुली (कंपोजिट) है। वास्तविकता यह है कि संस्कृति अलग-अलग हिस्सों से नहीं बनती। संस्कृति गंगा की धारा के समान है। संस्कृति में नए तत्व आते हैं, परंतु उनका पृथक कोई अस्तित्व नहीं रहता। भारत की संस्कृति कहने का अर्थ हिंदू संस्कृति लगाया जाता है और यह उचित भी है। संकोच या प्रयोजनवश इस तथ्य को स्वीकार न करने के बड़े घातक परिणाम हुए हैं।' (पृ. 204-5)
- 'जाति, रंग, प्रदेश, धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह को विशेष सुविधाएं अथवा अधिकार देने की प्रथा बंद की जाए।' (पृ. 206)

इन बातों की व्याख्या करने और इनकी शक्तियां-सीमाएं बताने की हिमाकत कौन करे! क्या यह बताने की ज़रूरत है कि ये सारी बातें मोहन भागवत की इस घोषणा, कि 'इस देश में सभी हिंदू हैं' और एक साध्वी के इस अविस्मरणीय वाक्य, कि जो रामज़ादे नहीं हैं वे ...ज़ादे हैं, का शिक्षा के क्षेत्र में अनुवाद हैं?

बत्रा जी ने किताब के आख़िरी हिस्से में शिक्षा संबंधी अपनी कुछ कविताएं और कहानियां भी संकलित कर दी हैं। प्राक्कथन-लेखक प्रो. कपिल कपूर का मानना है कि ये 'सभी कविताएं मन को द्रवीभूत करती हैं तथा प्रभावशाली हैं।' ऐसी प्रभावशाली कविता का एक नमूना देखिए:

'जहां रहते वहां पड़ोसी तो हैं, पड़ोसीपन है कहां?
लड़ते-झगड़ते, गाली-गलौज, शांति रहती है कहां?
विद्यालय तो गली-गली में हैं, विद्या का आलय है कहां?
कक्षा में विद्यार्थी तो हैं, अध्यापक पता नहीं हैं कहां?

अफ़सोस कि जिस तरह भारतीय शिक्षा व्यवस्था बत्रा जी के बताये रास्ते पर नहीं चल रही, उसी तरह हिंदी कविता भी उनके जैसी काव्यकला के नमूने पेश नहीं कर पा रही। कहां हैं हिंदी के पास कथ्य और शिल्प में ऐसी अनोखी कविताएं?

याद रखें कि दीनानाथ बत्रा जी इस समय संघ परिवार के सबसे कद्दावर शिक्षा-चिंतक हैं। 'शिक्षा बचाओ आंदोलन' और 'शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास' उन्हीं के नेतृत्व में चल रहे हैं। अगर और किसी वजह से नहीं, तो सिर्फ़ बत्रा जी की इस किताब को देखकर ही कोई भी शिक्षित व्यक्ति समझ सकता है कि आज शिक्षा को सबसे पहले इसी शिक्षा बचाओ आंदोलन से बचाने की ज़रूरत है। ◆

(यह लेख साहित्यिक मासिक 'हंस' के जनवरी, 2015 में भी प्रकाशित हो चुका है।)